लोक का रंग लोकगीत

-डॉ. किरण तिवारी

रोपा रोपे गेले रे डिंडा दंगोड़ी गुन्गु उपारे जिलिपी लगाये
लाजो नहीं लगे रे डिंडा दंगोड़ी गुन्गु उपारे जिलिपी लगाये
हर जोते गेले रे डिंडा दंगोड़ा एड़ी भईर तोलोंग लोसाते जाये
लाजो नहीं लगे रे डिंडा दंगोड़ा एड़ी भईर तोलोंग लोसाते जाये।
कितना उल्लास है इस लोकगीत में

हल जोतते हुए युवक की धोती का 'तोलोग' लहरा रहा है और धान रोपती युवती की बाली 'गुंगु' के ऊपर हिल रही है। ये लोकगीत है वही लोक गीत जो सबसे पहले हमारे पूर्वजों ने अन्ना के लिए गया था।

असल में लोक गीतो का मनोरंजन के साथ-साथ एक समाजशास्त्रीय संदर्थ भी होता है। धान रोपनी ही नहीं हर वो गीत जो लोक जीवन से जुड़ा है उसके आभाव में उल्लास का फलसफा है। शायद ये भविष्य में होने वाली बेहतर की उम्मीद है। ये वो आशा है जो भारतीय संस्कृति व भारतीय संस्कारों का प्रतिनिधित्व करती है।

वैदिक ऋचाओं की तरह लोक संगीत या लोकगीत अत्यंत प्राचीन एवं मानवीय संवेदनाओं के सहजतम उद्गार हैं। ये लेखनी द्वारा नहीं बल्कि लोक-जिह्वा का सहारा लेकर जनमानस से नि:सृत होकर आज तक जीवित रहे।

उपनिषद के रचयिताओं की कल्पना में ऐसा कोई गीत आ ही नहीं सकता था जिसका संबंध अन्न प्राप्ति के विचार से न हो या ऐसी किसी इच्छा की पूर्ति से न हो तभी तो सबसे पहला लोकगीत अन्न प्राप्ति के लिए ही किसी स्त्री ने गया होगा।

उपनिषद् के राचयियताओं को ऐसे किसी गीत की शायद ही जानकारी हो जो उदगीत न हो।

उद का अर्थ था श्वास, गीत का अर्थ था वाक् और था का अर्थ था अन्न अथवा भोजन तो भोजन खोजते अन्न लगाते हुए ऐसे हुआ लोकगीत का जन्म।

लेकिन वो गीत ही क्या जिसमे ठहराव आ जाए। लोक बदलते रहे, उनके संस्कार बदलते रहे, तो गीत कहां ठहरने वाले थे। वे जिसके कंठ से फूटे उसी जैसे होते गये, इसलिए लोक संस्कृति में कुछ जुटा तो कुछ घटा पर इस सारे जोड़-घटाव के बाद भी उसकी मूल सुगन्धि ज्यों की त्यों बनी रही। लोक का व्यूत्ति परक अर्थ है 'जो कुछ दिखता है, इंद्रिय गोचर है, प्रत्यक्ष विषयता का बोध होता है, वही लोक है' और उसके जनमानस से निकला संगीत लोक संगीत है।

लोकगीत इतिहास का वह दरवाजा है जिसने युद्धों, आंदोलनों बर्बरता से सभ्यताओं को सुरक्षित रखा है। दरवाजे के पार हमारा अतीत चाहे कैसा भी हो लोकधुन उसमें उल्लास भारती है। इस युग पुरानी परम्परा से जुड़ाव ने शब्दों के संयोजन को बचाए रखा है।

हमें अगर लोकगीतो के विषय में जानना है तो हमें अतीत की दीवारों पर कान लगाना ही होगा। वेदों से लेकर मोहनजोदड़ो तक और शायद उससे भी आगे तमाम स्त्री स्वर हमें सुनाई देंगे जिन्हें वर्तमान युग में सोहर गीत, मुंडन गीत, जनेऊ गीत, विवाह गीत, उत्सव गीत, खेल गीत, पेशा गीत, लोकगाथा गीत, पर्व गीत, जाति गीत आदि नाम दे दिया है।

आचार्य रामचंद शुक्ल कहते है, 'जब-जब शिष्टों